भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :
संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,

अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

मो. 9660111549

संस्करण :

प्रथम 2022-2023

ISBN **: 978 - 81 - 89435 - 64 - 6**

मूल्य - **300/-**

रचना - **भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**

सम्पादक - **डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा**

मुद्रक - **श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर**

15. स्वामी श्रद्धानन्द और राष्ट्रीय आन्दोलन

आराधना माहेश्वरी
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

युगपुरुष स्वामी श्रद्धानन्द का नाम भारतीय समाज और विश्व स्तर पर अपने महत्त्व के लिए अमर है। उन्होंने प्रारंभ में लाला मुंशीराम के सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण की और धीरे-धीरे अपनी साधना, ज्ञान और नैतिक ऊँचाई के कारण महात्मा मुंशीराम का स्थान ग्रहण किया। उनके जीवन में आत्मसाधना, अध्ययन और समाज सेवा का अद्वितीय समन्वय दिखाई देता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से वे सच्चे संत थे, जिन्होंने जीवन में सत्य, धर्म और मानवता को सर्वोपरि रखा। महर्षि दयानन्द के प्रभाव ने उनके जीवन को अज्ञान और अंधकार से निकालकर उसे पवित्र और प्रभावशाली बनाया।

शैक्षिक क्षेत्र में उनका योगदान अनमोल है। गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना कर उन्होंने विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ-साथ माँ-पिता और घर का अभाव महसूस न होने दिया। उनका मानना था कि शिक्षा केवल ज्ञान का माध्यम नहीं, बल्कि नैतिक और व्यक्तित्व निर्माण का साधन भी है।

राजनीतिक दृष्टि से स्वामी श्रद्धानन्द राष्ट्रभक्त थे। उन्होंने समाज सुधार, धार्मिक जागरूकता और राष्ट्र सेवा में अपना जीवन समर्पित किया। उनके व्यक्तित्व की भव्यता का अंदाजा रेम्जे मैकडोनाल्ड के कथन से भी लगाया जा सकता है, जिन्होंने कहा कि यदि आज किसी कलाकार को ईसा की मूर्ति बनाने के लिए जीवित मॉडल चाहिए, तो वे स्वामी श्रद्धानन्द की ओर संकेत करेंगे।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दो प्रकार के साधन अपनाए गए—शांतिपूर्ण और क्रांतिकारी। शांतिपूर्ण साधनों का अथज़ था वैध और अहिंसात्मक उपायों के माध्यम से राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति का प्रयास करना। इसके विपरीत, सशस्त्र विद्रोह और आतंकवादी उपाय क्रांतिकारी प्रयासों के अंतर्गत आते थे। ऐसे प्रयास केवल भारत तक सीमित नहीं थे; आयरलैंड, रूस, इटली जैसे देशों में भी जनता ने दोनों प्रकार के साधनों का उपयोग किया। भारत में 1947 ई. तक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए दोनों प्रकार के उपाय अपनाए गए।

आयज़्समाज ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई। इसके कई नेता शांति और नैतिकता के मागज़् पर चलकर संघर्ष में शामिल हुए। लाला लाजपत राय और महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जैसे नेताओं ने शांतिपूर्ण साधनों से स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया। वहीं, श्यामजी कृष्ण वर्मा, भाई परमानंद, होतीलाल वर्मा, गेंदालाल दीक्षित, रामप्रसाद बिस्मिल, पंडित परमानंद (झाँसी), सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित होकर क्रांतिकारी और हिंसक उपायों से देश की आज़ादी के प्रयासों में शामिल हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के सजग प्रहरी और गांधीजी के परम स्नेही थे। उन्होंने अपने जीवन को देश और समाज की सेवा में समपिज़्त किया। एक धमाज़्न्ध व्यक्ति की गोलियों से शहीद होने के बावजूद उनका आदर्श और साहस आज भी प्रेरणा ीेत है। महात्मा गांधी ने स्वामी श्रद्धानन्द के साहस और निस्वार्थ भाव की सराहना करते हुए कहा था कि ''स्वामी श्रद्धानन्द से बढ़कर मैंने दूसरा बहादुर व्यक्ति संसार में नहीं देखा। देश के लिए उन्होंने अपना शरीर भेंट करने की प्रतीज्ञा की थी। वे अनाथों और अछूतों के संरक्षक थे, और उनके द्वारा किए गए प्रयासों से अधिक किसी ने हिन्दुस्तान में नहीं किया।''

स्वामी श्रद्धानन्द ने शिक्षा के क्षेत्र में भी अद्वितीय योगदान दिया। गुरूकुल कांगड़ी में शिक्षा केवल ज्ञान तक सीमित नहीं थी; यहाँ विद्यार्थियों को संस्कार, चरित्र निर्माण और नैतिक शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षण परंपरा की उत्कृष्टता को न केवल भारतीय बल्कि पश्चिमी विद्वानों ने भी मान्यता दी। परिणामस्वरूप, गुरूकुल को काली सूची से निकालकर श्वेत सूची में रखा गया, जिससे इसकी वैश्विक प्रतिष्ठा और मान्यता स्थापित हुई। स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन, उनका साहस और उनकी शिक्षा-दीक्षा आज भी राष्ट्र और समाज के लिए प्रेरणादायक हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द स्वयं आर्यसमाज को राजनीतिक संस्था नहीं मानते थे और उनका मूल दृष्टिकोण धार्मिक था। देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने उन्हें राजनीति में सक्रिय होने के लिए प्रेरित किया। उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि में उनके पिता लाला नानकचन्द ने 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों की सहायता करके पुलिस में पद प्राप्त किया था। किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि स्वामी मुंशीराम ने हमेशा अंग्रेजों का समथज़्न किया। जब उन्हें नायब तहसीलदारी की नौकरी मिली, तो उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों के व्यवहार और अपने आत्म-गौरव की रक्षा के लिए इस पद से त्यागपत्र दे दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'पंजाबी' पत्र में स्पष्ट किया कि आर्यसमाज स्वयं अराजनैतिक

संस्था है। पंजाब के राजनीतिक आंदोलनों में कुछ आर्यसमाजी शामिल जरूर थे, किन्तु कुछ कट्टरपंथियों के कार्यों के आधार पर पूरे समुदाय को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उनका दृष्टिकोण वैधानिक और नैतिक राजनीतिक प्रयासों को ही सही मानता था।

स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना में राष्ट्रभक्ति और स्वदेश प्रेम का गहन संचार किया। गुरुकुल में मातृभूमि, राष्ट्रभक्ति और स्वदेश गौरव का जो पाठ पढ़ाया जाता था, वह ब्रिटिश शासन के अधीन संचालित अन्य शिक्षण संस्थानों में दुर्लभ था। इस राष्ट्रीय चेतना से सुसज्जित स्नातकों ने देश और समाज के लिए अनेक कुर्बानियाँ दीं, जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता के इतिहास को गौरवमय बनाया। इसी कारण तत्कालीन ब्रिटिश प्रशासन गुरूकुल के प्रति आशंकित और अविश्वासपूर्ण था, जिसका निवारण महात्मा मुंशीराम जैसी सूझबूझ वाले व्यक्तित्व ने समय रहते किया।

स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस से भी जुड़कर देश में राजनीतिक चेतना के प्रसार में योगदान दिया। उस समय कांग्रेस का जनाधार सीमित था और इसे पठित वगज़ का एक डिबेटिंग क्लब माना जाता था। 1888 में स्वामी जी का कांग्रेस से प्रथम संपकज़ हुआ। उन्होंने कांग्रेस के प्रारंभिक वषोज़्, मुसलमानों को जोड़ने के प्रयास, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्रपाल जैसे नेताओं के योगदान तथा सूरत अधिवेशन में गरम दल और नरम दल की टकराहट का रोचक वर्णन किया।

स्वामी श्रद्धानन्द केवल राजनीतिज्ञ नहीं थे; वे राजनीति में आध्यात्मिक दृष्टि और मानव कल्याण के उद्देश्य से प्रविष्ट हुए। उन्होंने रॉलेट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह इसलिए किया क्योंकि यह कानून मानव के मौलिक अधिकारों के खिलाफथा। परिस्थितियों के कारण उन्हें अमृतसर–कॉंग्रेस की स्वागत समिति का अध्यक्ष बनना पड़ा, लेकिन उनका उद्देश्य राजनीति को आध्यात्मिक बनाना और अछूतों के उत्थान के लिए संघर्ष करना था। जब उन्होंने देखा कि उनके प्रयासों को पयाज़्त समर्थन नहीं मिल रहा, तो उन्होंने कांग्रेस के सक्रिय नेतृत्व से अलग होकर दलितोद्धार सभा की स्थापना की और स्वयं के बलबूते पर कार्य आरंभ किया।

कांग्रेस की प्रारंभिक गतिविधियों में स्वामी श्रद्धानन्द ने जालंधर में स्थानीय कांग्रेस कमेटी का गठन किया और आम जनता में राजनीतिक जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। किन्तु जब उनके साथी इसे केवल प्रचार और बैठक तक सीमित रखने लगे, और आर्यसमाज की भावनाओं के प्रति अनासक्त दिखाई दिए, तो उन्होंने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने पूरी तरह से जालंधर आर्यसमाज के कार्यों में लगकर समाज सेवा और शिक्षा में अपना ध्यान केंद्रित किया।

इस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द का दृष्टिकोण स्पष्ट था—राजनीति में प्रवेश परिस्थितियों और मानव कल्याण के उद्देश्य से हुआ, परंतु उनका प्राथमिक ध्यान समाज सुधार और

अछूतों के उत्थान पर केन्द्रित रहा।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि स्वामी श्रद्धानन्द के लिए आर्यसमाज का कार्य हमेशा सर्वोपरि था। 1893 में पंजाब के लाहौर में आयोजित 9वें वार्षिक अधिवेशन में उनके मित्र बक्शी जयशीराम को कायज़्वाहक मंत्री बनाया गया। उनके सुझाव पर स्वामी मुंशीराम ने पंजाब में 10–12 व्याख्यान दिए और राष्ट्रीय कांग्रेस के कायज़् एवं ध्येय पर निरंतर प्रकाश डाला।

उन्होंने स्वयं लिखा कि कांग्रेस से जुड़े रहते हुए भी वे आर्यसमाज आंदोलन में अधिक सक्रिय रहे। 1907 में एडवर्ड के जन्मदिन पर आर्यसमाज की ओर से प्रार्थना करने पर राष्ट्रीय पत्रों ने आलोचना की। इस पर लाला मुंशीराम ने स्पष्ट किया कि आर्यसमाज का प्रचार केवल ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन ही संभव था। उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' में लिखा कि ब्रिटिश शासन द्वारा सुरक्षा का लाभ उठाना उचित है और इसके लिए वर्ष में एक दिन धन्यवाद देना समाज का कर्तव्य है। उनके अनुसार, पूरे भारत के आयज़्समाजों को एकमत होकर यह दिन नियत करना चाहिए।

लाला मुंशीराम ब्रिटिश सरकार के प्रति धार्मिक कर्तव्य और आभार व्यक्त करना आर्यसमाजियों का आवश्यक दायित्व मानते थे। उनके समय में, हैदराबाद की मुस्लिम रियासत ने सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी उपदेशक स्वामी नित्यानन्द और पंडित बालकृष्ण शर्मा को उनके वार्षिकोत्सव में भाषण देने से रोककर निवाज़्सित कर दिया था। ऐसी घटनाएँ आम थीं, इसलिए लाला जी का विश्वास था कि ब्रिटिश शासन ने भारत में वैदिक धर्म प्रचार की स्वतंत्रता दी है, और इसके लिए हमें उनका धन्यवाद करना चाहिए।

1911 के दिल्ली दरबार में सम्राट जॉर्ज को लक्षित करते हुए उन्होंने 'सद्धर्म प्रचारक' में 'सम्राट, तुम यहीं रहो' शीषज़्क से लेख लिखा। इसके बाद 1912 में नई राजधानी दिल्ली में लार्ड हार्डिंग के आगमन पर आर्यसमाज द्वारा चाँदनी चौक में आयोजित भव्य स्वागत का आयोजन उनके विचारों और सक्रियता का उदाहरण था।

इस प्रकार लाला मुंशीराम ने धर्म प्रचार और सामाजिक कार्यों के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए ब्रिटिश शासन के प्रति धन्यवाद और सहयोग को नैतिक कर्तव्य माना।

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने अनेक ऐसे छात्र तैयार किए, जिन्होंने हिन्दी साहित्य में विशारद, शास्त्रज्ञ, वैज्ञानिक, प्रशासक, शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में देश को सम्मानित किया। गुरुकुल ने उच्च आदर्शों, चरित्र निर्माण, राष्ट्रीय सेवा, देशभक्ति, सादगी और आत्मबलिदान का संदेश दिया। यहाँ विद्यार्थियों में वैदिक जीवन आदर्श और राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का गहन संचार होता था।

इस गुरुकुल की प्रतिष्ठा इतनी थी कि स्वतंत्र भारत में भी इसे विशेष शिक्षण संस्थान के रूप में देखा जाता है। ब्रिटिश अभिविन्यासित विश्वविद्यालयों के विपरीत, यहाँ भारतीय बुद्धिजीवी स्वतंत्र रूप से अध्ययन कर सकते थे। विदेशी विद्वान एरिक एशबाय ने भी गुरुकुल की विशिष्टता को मान्यता देते हुए कहा कि यह संस्थान सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का केन्द्र है।

स्वामी श्रद्धानन्द राष्ट्रीय आंदोलन के अप्रत्यक्ष कार्यकर्ता भी थे। गुरुकुल के छात्र राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे और कहा जाता है कि कुछ ब्रह्मचारी उनके माध्यम से क्रांतिकारी साहित्य का आदान-प्रदान करते थे। संभवत: इसी समय यहाँ गुप्त क्रांतिकारी संस्था 'बांधव समाज' की शाखा भी स्थापित हुई।

स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी में राष्ट्रभाषा हिन्दी को सशक्त केंद्र के रूप में स्थापित किया। उन्होंने पत्र 'धर्मप्रचारक' (3 मई, 1913) में यह उल्लेख किया कि संयुक्त प्रांत के न्यायालयों में उनकी आयज़ भाषा हिन्दी और देवनागरी लिपि को मान्यता मिलना सराहनीय था।

स्वामी श्रद्धानन्द के राष्ट्रीय विचारों के प्रेरक महर्षि दयानन्द थे। पंजाब सरकार के मुख्य सचिव जे.पी. थॉमसन ने लिखा कि सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति यह समझेगा कि इस धर्म का उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का संचार करना था। यही कारण है कि बड़ी संख्या में आर्यसमाजी राष्ट्रवादी आंदोलनों में सबसे आगे रहे। उनके उद्देश्य और धर्म का प्रधान तत्व राष्ट्रीयता था, जिसके चलते वे विद्रोहात्मक आंदोलनों में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुए।

स्वामी श्रद्धानन्द भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को धर्मनिष्ठ और मानवतावादी बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता मिलने के बाद भी चरित्रवान और अनुशासित व्यक्ति ही राष्ट्र की रक्षा में सक्षम हो सकते हैं। शताब्दी के प्रथम दशक में आर्यसमाज के राष्ट्रभक्तिपूर्ण विचारों और कार्यों के कारण अंग्रेजी सरकार ने उस पर संदेह व्यक्त किया। इस परिस्थिति में स्वामी श्रद्धानन्द ने स्पष्ट किया कि आर्यसमाज का देश की प्रचलित राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है, और आवश्यकतानुसार इसे राजभक्त संस्था के रूप में प्रस्तुत किया। इस नीति का उदाहरण दिल्ली में लार्ड हार्डिंग के आगमन पर आयोजित स्वागत कार्यक्रम है। सार्वदेशिक सभा ने उनके स्वागत का अभूतपूर्व आयोजन किया। सभा के मैदान में 250-300 आर्यसमाजी उपस्थित थे, और स्वामी अच्युतानन्द, महात्मा मुंशीराम, पं. पूर्णानन्द और अन्य प्रतिष्ठित लोग शामियाने में विराजमान थे। जैसे ही वायसराय का हाथी वहां आया, सभी ने खड़े होकर शान्तिपाठ पढ़ा और 'नमस्ते भगवन्' का उद्घोष किया। इस आयोजन की योजना मुख्यत: स्वामी मुंशीराम ने तैयार की थी।

तत्कालीन परिस्थितियों में स्वामी मुंशीराम को राजभक्ति और सरकार के प्रति

निष्ठा दिखाना पड़ा, लेकिन इसमें ईमानदारी थी—कोई चापलूसी या खुशामद नहीं। उन्होंने आर्यसमाज को षड्यंत्रकारी या राजद्रोही बताने वालों को स्पष्ट किया कि आर्यसमाज राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं है, पर यदि हुकूमत का तानाशाही रवैया जारी रहा, तो आर्यसमाजी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए सक्रिय रूप से राजनीति में उतर सकते हैं।

स्वामी श्रद्धानन्द 1907 के सूरत विभाजन से गहरे दुखित थे। उन्होंने लिखा कि यदि कुछ साहसी आर्यसमाजी सामने आएँ, तो राजा और प्रजा दोनों को सचेत किया जा सकता है। इसी दृष्टि से वे नरम दल को 'भिक्षार्थी', गरम दल को 'सुखार्थी' और सरकार को 'गोराशाही' कहकर संबोधित किया करते थे।

महात्मा मुंशीराम और अन्य आर्यसमाजी स्वराज्य प्राप्ति के समथज़्क थे, लेकिन कांग्रेस के नरम और गरम दोनों दलों की नीतियों से वे असहमत थे। वे माडरेट नेताओं की योग्यता को मानते थे, किन्तु उनकी भिक्षा-नीति को पसंद नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि स्वराज्य तभी मिलेगा जब भारतवासी इसके योग्य बनेंगे, और आतंकवाद में उनकी आस्था नहीं थी। इसी कारण 1918 तक अधिकांश आयज़्समाजी प्रचलित राजनीति से दूरी बनाए रखते रहे।

महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह की घोषणा और सत्य, अहिंसा एवं पवित्र जीवन के आदशोज़्ं ने स्वामी श्रद्धानन्द और उनके साथियों पर गहरा प्रभाव डाला। गांधीजी भारत आने से पहले अपने सत्याग्रह आश्रम के बालकों को गुरूकुल कांगड़ी में भेज चुके थे, जिसमें देवदास गांधी भी शामिल थे।

गांधीजी की सत्याग्रह घोषणा का समाचार पढ़ते ही स्वामी श्रद्धानन्द ने उन्हें त्वरित संदेश भेजा कि "मैंने अभी-अभी सत्याग्रह की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किए हैं। इस धर्मयुद्ध में सम्मिलित होने से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।" इससे दोनों महात्माओं के जीवन और आदर्शों में गहन समानता और परस्पर बन्धुत्व स्पष्ट रूप से दिखा।

स्वामी श्रद्धानन्द ने असहयोग आंदोलन और स्वदेशी संकल्प के प्रचार-प्रसार में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने अपने पत्रों और वक्तव्यों के माध्यम से अंग्रेजी शासन के विरोध और स्वदेशी के संदेश को निर्भीकता से फैलाया। इस पर 3 अप्रैल, 1919 को गांधीजी ने उन्हें तार भेजकर उनके प्रयासों की सराहना की और रॉलेट कानून के विरोध में उनके अनुकरणीय धैर्य को सम्मानित किया।

स्वामी श्रद्धानन्द की लोकप्रियता और आंदोलन में सक्रियता को देखकर वायसराय चेम्सफोर्ड ने भारत सचिव को लिखा कि "महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) गांधी के साथ इस आंदोलन में शामिल हो गया है। वह पुराना धार्मिक नेता और समाज सुधारक है, और अब राजनीतिक आंदोलन में भी नाम कमाना चाहता है। उसके पुत्र

और उसके माध्यम से निकलने वाले समाचार पत्रों के कारण भी उसकी प्रभावशीलता बढ़ रही है।''

स्वामी श्रद्धानन्द ने 'सद्धर्म प्रचारक', 'द लिबरेटर' और 'श्रद्धा' जैसे पत्रों के माध्यम से भारतीय जनजीवन में राष्ट्रीय जागरण का महत्वपूर्ण कार्य किया। 'सद्धर्म प्रचारक' 17 वर्ष, 'श्रद्धा' 2 वर्ष और 'लिबरेटर' 1 वर्ष तक प्रकाशित होकर जनता को प्रेरित करते रहे। उनके सहयोगी पंडित ब्रह्मानन्द, पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति, पंडित हरिश्चन्द्रजी, आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार और पी.आर. लेले थे।

इन पत्रों में प्रकाशित उनके लेख और टिप्पणियाँ स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द का राष्ट्रीय चिंतन और राजनीतिक जागरूकता पर गहरा प्रभाव था। उन्होंने धर्म और राजनीति को अलग नहीं माना, बल्कि राष्ट्र कल्याण के लिए दोनों को जोड़कर देखा।

स्वामी जी ने दिल्ली, मध्य भारत, पंजाब और राजपूताना में अपने पत्रों और लेखों के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय योगदान दिया। उन्होंने अपने पुत्र इन्द्र को स्वतंत्र विचार रखने और कांग्रेस में शामिल होने पर स्वतः निर्णय लेने का निर्देश दिया। लाला लाजपत राय के साथ मतभेद के बावजूद वे उनके प्रशंसक बने रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द की विलक्षण प्रतिभा यह थी कि वे राष्ट्रीय आंदोलन के प्रेरक होने के साथ-साथ दलितों के शुद्धि आंदोलन और आर्यसमाज के अन्य धार्मिक कार्यक्रमों से विमुख नहीं हुए।

सारतः कहा जा सकता है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने जीवन और कृतित्व से यह सिद्ध किया कि धर्म, समाज सुधार और राजनीति एक-दूसरे से पृथक नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र के कल्याण और जागरूक नागरिक तैयार करने में एकसाथ काम कर सकते हैं। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा, चरित्र निर्माण और राष्ट्रीय चेतना का विकास किया। अपने लेख, पत्र और वक्तव्यों से उन्होंने स्वदेशी, असहयोग और स्वराज्य के विचार फैलाए, बिना हिंसा और आतंकवाद में विश्वास किए।

उनकी नीति और कार्यों में स्पष्ट संतुलन था। वे राजनीतिक जागरूकता और धर्मनिष्ठ समाज सुधार दोनों में अग्रणी रहे, और राष्ट्रीय आंदोलन के अप्रत्यक्ष तथा प्रेरक नेता बने। उनकी यह दृष्टि और प्रयास ही उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के एक दूरदर्शी, धर्मनिष्ठ और मानवतावादी सेनानी के रूप में चिन्हित करता है।

❑❑❑